International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

भारतीय धर्मशास्त्रों में कर्म–पुनर्जन्म का सिद्धान्त : एक विवेचन

डॉ0 नीलिमा चौधरी

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,लखनऊ, उ0प्र0

शोध सारांश :

प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने कर्म पर गहराई से विचार किया। न्याय, सांख्य, वेदान्त, वैशेषिक मीमांसक, बौद्ध और जैन सभी दार्शनिकों ने कर्मवाद के सम्बन्ध में चिन्तन दिया। केवल दर्शन ही नहीं बल्कि साहित्य, विज्ञान, कला आदि पर भी कर्मवाद की स्पष्ट छाया देखी जा सकती है। विश्व में सर्वत्र विषमता, विचित्रता देखकर विचारकों ने कर्म सिद्धान्त की अद्भुत व्याख्या की। सभी धर्मो में स्पष्ट उल्लेख है कि मनुष्य को उसके सुख–दुःख की प्राप्ति उसके किये गये कर्मों से होती है। कर्म से बंधा हुआ जीव अनादि काल तक विभिन्न योनियों में जन्म (पुनर्जन्म) लेकर अपने कर्म का भोग करता है।

पुनर्जन्म से छुटकारे या मुक्ति का भी प्राविधान भारतीय दर्शन एवं साहित्य में किया गया है। यह विचारणीय है कि पुनर्जन्म होता ही कब है। इस पर विवेकानन्द की टिप्पणी महत्वपूर्ण है, जिससे पता चलता है कि जन्म–मरण चक्र से छुटकारा कैसे प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्य का शरीर एवं मन परिवर्तनशील है। देह का नाश तो प्रतिक्षण होता रहता है और मन तो सदा बदलता रहता है। देह तो एक संघात है और उसी तरह मन भी। इसी कारण परिवर्तनशीलता के परे वे नहीं पहुँच सकते। परन्तु स्थूल जड़ भूत के इस क्षणिक आवरण के परे, मन के सूक्ष्म आवरण के भी परे, मनुष्य का सच्चा स्वरूप नित्य मुक्त सनातन आत्मा अवस्थित है।

प्रमुख शब्द– मीमांसा दर्शन, गीता में कर्मयोग, शतपथ ब्राह्मण, *पुनर्जन्म,* मरणोत्तर जीवन।

जन्म और मृत्यु का मूल कर्म है, और कर्म ही दुःख का सर्जक है। जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है, अर्थात् कर्म ही प्रधान है। यहाँ विशेष उल्लेखनीय है कि प्रत्येक प्राणी अपने कर्मफल का प्रतिभागी होता है दूसरे का नहीं। कर्म का अर्थ वास्तव में व्यापकता भरा व्यवहार, इसमें प्रवृत्ति, क्रिया आदि जो द्रष्टव्य आते है साथ ही जो हम अनजाने में भी कर जाते है, उसे भी कर्म के अन्तर्गत रखा जा सकता है। सोना, बैठना, खाना, पीना आदि जीवन व्यवहार में जो कुछ भी किया जाता वह कर्म कहलाता है। व्याकरण शास्त्र के कर्ता 'पाणिनि' ने कर्म की व्याख्या करते हुए कहा जो कर्ता के लिए अत्यन्त इष्ट हो वह कर्म है।[1] मीमांसा दर्शन ने क्रिया खण्ड को या यज्ञ आदि अनुष्ठान को कर्म कहा है।

वैशेषिक में कर्म की परिभाषा इस प्रकार– जो एक द्रव्य में समवाय से रहता हो, जिसमें कोई गुण न हो और जो संयोग में कारणान्तर की अपेक्षा न करे।[2] सांख्य दर्शन में संस्कार के अर्थ में कर्म शब्द का प्रयोग मिलता है।[3]

गीता में कर्मयोग को कुशल कर्म कहा गया है।[4] अर्थात् गीता में कर्म विषयक बातों का उल्लेख विस्तार पूर्वक किया गया है। न्यायशास्त्र में उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

तथा गमनरूप पाँच प्रकार की क्रियाओं के लिए कर्मशब्द व्यवहृत हुआ है। स्मार्थ विद्वान चार वर्णो और चार आश्रमों के कर्तव्यों को कर्म की संज्ञा प्रदान करते है। पौराणिक लोग व्रत–नियम आदि धार्मिक क्रियाओं को कर्मरूप कहते है। बौद्ध दर्शन जीवों की विचित्रता के कारण को कर्म कहते है, जो वासना रूप है। जैन परम्परा में कर्म दो प्रकार का माना गया है– भावकर्म और द्रव्यकर्म। राग द्वेषात्मक परिणाम अर्थात् कषायभाव कर्म कहलाता है, कार्मण जाति का पुद्गल जड़तत्व विशेष, जो कषाय के कारण आत्मा के साथ मिल जाता है, द्रव्यकर्म कहलाता है। यह ध्यातव्य है कि प्राचीन दर्शनों ने (सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा एवं वेदान्त) ने एक दूसरे की आलोचना की है परन्तु वे कर्म एवं पुनर्जन्म जैसे सिद्धान्त पर सहमति देते है, केवल भौतिक वादियों ने इसे अमान्य ठहराया क्योंकि उनका मूल सिद्धान्त ही शरीर के भस्म होने के उपरान्त आत्मा कहाँ से आयेगी पर टिका हुआ है।[5] प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में स्वर्ग एवं नरक का संकेत मिलता है, कहा जाता है कि स्वर्ग और नरक पारलौकिक स्थान जहाँ आत्मा को पूर्व जीवन के कर्मों का फल मिलता है। स्वर्ग एक आनन्ददायक स्थान है, जहाँ जीवात्मा को उसके अच्छे कर्मों के लिए पुरस्कार मिलता है। इसके विपरीत नरक एक कष्टदायक स्थान है। जहाँ जीवात्मा को बुरे कर्मों के लिए दण्ड दिया जाता है, परन्तु ये वैदिक धारणा किसी पारलौकिक सत्ता में विश्वास को बलवती करती है जो मनुष्य को उसके कर्म के अनुसार दण्ड देता है, साथ ही उसके कर्म फल या भोग के लिए उसके पुनर्जन्म की व्यवस्था करता है, जिसमें मनुष्य जन्म लेकर अपने कर्मों को भोगता है।

कर्म की प्राचीनता इस बात से पता चलती है कि वैदिक साहित्य में ऋग्वेद में इसका 40 बार उल्लेख हुआ है, कहीं–कहीं इसका अर्थ 'पराक्रम' या 'वीर कार्य'[6], प्रशंसा के योग्य उसके (इन्द्र के) प्राचीन कर्मों की घोषणा अपने शब्दो से करो।[7] ऋग्वेद के कुछ स्थलों पर कर्म का अर्थ धार्मिक कृत्य (दान यज्ञ), यथा देव लोक इस कवि के सभी कर्मों को स्वीकार करते हैं, जो तुम्हे स्तुति देता है।[8]

प्राचीन काल में स्वर्ग ऐसा स्थल माना जाता था जहाँ अधिक से अधिक कर्मों के फल का आनन्द लिया जाता है। इस लोक के फल (यथा– सम्पत्ति, वीर, पुत्रों) के लिए स्तुति निःसन्देह की जाती थी, किन्तु अमृतत्व एवं स्वर्ग के आनन्द को सर्वाधिक मूल्य दिया जाता था। ऋग्वेद में अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि वह मृत को उन लोगों के लोक में ले जाये जिन्होंने अच्छे कर्म किये हैं।[9] ब्राह्मण ग्रन्थों में सत्कर्मों के फलों एवं दुष्कर्मों के प्रतिकार के विषय में पर्याप्त वर्णन मिलता है, शतपथ ब्राह्मण में प्रतिकार की भावना व्यक्त की गयी है।[10] शतपथ ब्राह्मण में एक कथा आयी है जिसके मूल में यहीं है कि जो जैसा कर्म करता है, वैसा फल प्राप्त करता है।[11] शतपथ ब्राह्मण एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण ने कई बार 'पुनर्मुत्यु' (बार–बार मरना, अर्थात् बार–बार जन्म लेना एवं मरना) को जीत लेने अथवा उसको दूर कर देने की बात कही है। शतपथ ब्राह्मण में आया है कि अब यह तराजू है, अर्थात् वेदी का दाहिना पार्श्व। वह वेदी का दाहिना पार्श्व छूकर बैठ जाय, क्योंकि वास्तव में वे उसे सामने के लोक में तराजू पर बैठाते हैं, और दोनों में जो ऊपर उठ जायेगा, वह उसी का अनुसरण

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

करेगा, चाहे वह अच्छा हो या बुरा। जो कोई इसे जानता है वह इस तराजू पर इस लोक में बैठता है और सामने के लोक में अर्थात् आगे के या परलोक में बैठने से छुटकारा पा जाता है, क्योंकि यह सत्कर्म ही है जो ऊपर उठता है, बुरा कर्म नहीं।[12] शतपथ ब्राह्मण इस निष्कर्ष में विश्वास करता है कि मनुष्य के कर्म ही उसे दूसरे लोक (अर्थात् पुनर्जन्म के बाद वैसा) में अच्छे एवं बुरे जन्म के लिए उत्तरदायी है, हालाँकि शतपथ ब्राह्मण का ज्यादा जोर यज्ञ–अनुष्ठान से दूसरे लोक को अच्छा बनाने पर है, जिसमें दर्श एवं पूर्णमास आदि यज्ञ महत्वपूर्ण है।[13] ब्राह्मण धर्म–दर्शन में विशेष रूप से गीता जिसका मुख्य उपदेश कर्मयोग पर ही महत्वपूर्ण है। गीता की रचना निष्क्रिय और किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन को कर्म के विषय में मोहित कराने के उद्देश्य से की गई है। यही कारण है कि गीता में श्रीकृष्ण निरन्तर कर्म करने का आदेश देते है। अतः गीता का मुख्य विषय कर्मयोग कहा जा सकता है।

कर्म का अर्थ आचरण है। उचित कर्म से ईश्वर को अपनाया जा सकता है। ईश्वर स्वयं कर्मठ है, इसलिए ईश्वर तक पहुँचने के लिए कर्म मार्ग अत्यन्त ही आवश्यक है, शुभ कर्म वह है जो ईश्वर की एकता का ज्ञान दे। अशुभ कर्म वह है जिसका आधार अवास्तविक वस्तु है। गीता में अर्जुन को कृष्ण सम्बोधित करते हुए कहते है कि हे अर्जुन! यह समबुद्धि तेरे लिए ज्ञान योग के विषय में कही गई है और इसी को कर्मयोग के विषय में सुन, जिस बुद्धि से युक्त हुआ तू कर्मों के बन्धन को पूरी तरह छोड़ देगा (अर्थात्, सर्वथा नष्ट कर डालेगा)।[14] अर्थात् कृष्ण भगवान ने बुद्धि अर्थात् समबुद्धि यानी समानता दृष्टिकोण पर बल दिया है। संसार में नाना विषयों एवं कर्मों में भेदभाव रखने के कारण ही उनमें अच्छा, बुरा, छोटा–बड़ा, गरम–ठण्डा, सुख–दुःख आदि का अनुभव होता है, जिसमें मन में विकार उत्पन्न होते है और कर्मबन्धन रूपी पाप का कारण बनते हैं अब यदि इस मूल बात को समझ लिया जाए कि सभी पदार्थ एक ही प्रकृति के तथा सभी–जीव एक ही परमात्मा के अंश है, तो भिन्न–भिन्न वस्तुओं तथा प्राणियों के प्रति यह अलग–अलग होने तथा असमानता की नीच भावना ही समाप्त हो जाएगी, जिससे मन में नाना विकार भी नहीं उपजेंगे और, फलस्वरूप कर्मबन्धनों के कारणभूत पाप भी नहीं पैदा हो सकेंगे। सो, कर्मबन्धनों का नाश करने, यानी मोक्ष प्राप्त करने के लिए यह समानता का दृष्टिकोण अर्थात् समबुद्धि होना नितान्त आवश्यक ही नहीं, अपितु सर्वथा अनिवार्य है। कृष्ण जीव के परमात्मा के साथ कर्म के द्वारा योग करने को 'कर्मयोग' कहते है। कर्म कैसे? वे काम जो ममता, आसक्ति तथा फलेच्छा के बिना सफलता और असफलता में समभाव होकर राग द्वेषादि मनोविकारों से ऊपर उठते हुए निश्शेष रूप से परमेश्वर के चरणो में समर्पित कर दिए गए हो। इस विधि से किए गए कर्मफल उत्पन्न करने में असमर्थ होते है और मनुष्य अपने पूर्वसंचित कर्मफलों का भोग समाप्त कर परमात्मा में विलीन हो जाता है– उसके साथ अपना योग कर देता है। इस प्रकार, भगवान अर्जुन को सांख्ययोग (ज्ञानयोग) एवं कर्मयोगी रूपी दोनों ही साधनों की दृष्टि से युद्ध का औचित्य प्रतिपादित करते है।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं– इस प्रकार जो (मनुष्य) (उनको) तत्व ज्ञान लेता है, वह शरीर को छोड़कर फिर जन्म ग्रहण नहीं करता (बल्कि) मुझे ही प्राप्त हो जाता है (अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है)।[15]

सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन को आसुरी स्वभाव वालों की निन्दा और भगवद्भक्तों की प्रशंसा करते हुए कहते है कि बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्वज्ञान को प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है– इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।[16]

कृष्ण अर्जुन से ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादि विषय में अर्जुन के सात प्रश्न और उनके उत्तर देते हुए कहते हैं कि हे कुन्ती पुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अन्तकाल में जिस–जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस–उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भक्ति रहता है।[17]

और जब कृष्ण अर्जुन को भक्ति योग के बारे में बताते हुए कहते है– परमसिद्धि को प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दुःखो के घर एवं क्षणभंगुर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते।[18]

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती है परन्तु हे कुन्ती पुत्र! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता, क्योंकि मैं कालातीत हूँ और ये सब ब्रह्मादि के लोक काल के द्वारा सीमित होने से अनित्य है।[19]

गीता के नवें अध्याय में कृष्ण अर्जुन को सकाम एवं निष्काम उपासना का फल बताते हुए कहते है कि वे, उस विस्तृत (महान) स्वर्गलोक को भोग चुकने पर (तथा अपने) पुण्यकर्मों के (फल भोग को) समाप्त कर लेने पर, (फिर) मृत्युलोक को आते हैं (यानी प्राप्त होते हैं)। इस प्रकार (स्वर्ग के साधन रूप) तीनों वेदों में कहे–हुए (सकाम कर्मरूपी) धर्म का आश्रय लेने वाले (और) भोगों की कामना वाले (पुरुष बार–बार) आवागमन को प्राप्त होते है (अर्थात्, पुण्यों के प्रभाव से स्वर्ग में जाते हैं तथा पुण्यों के क्षीण होने पर मृत्यु लोक में आते हैं।[20]

वनपर्व (महाभारत) में द्रौपदी एवं युधिष्ठिर में एक वार्तालाप हुआ है। युधिष्ठिर ने कौरवों के साथ द्यूत खेल कर सारा राज्य खो दिया था और वन में बड़े कष्ट से जीवन–यापन कर रहे थे। द्रौपदी को इस बात का बड़ा आश्चर्य था कि युधिष्ठिर ऐसे सत्यवादी, उदार, ऋजु एवं मधुर व्यक्ति किस प्रकार द्यूत ऐसे निकृष्ट कार्य में संलग्न हुए और भगवान् सभी जीवों के साथ माता–पिता सा समान व्यवहार नहीं करता है।[21]

अनुशासन पर्व के प्रथम अध्याय में गौतमी, उसके पुत्र की सर्प दंश से मृत्यु, आखेटक से गौतमी का वार्तालाप तथा काल की बातें वर्णित है, जो कर्म सिद्धान्त पर प्रकाश डालती है। गौतमी को चित्त संयम प्राप्त था। उसके पुत्र को एक सर्प ने काट लिया और वह मर गया। एक शिकारी (आखेटक) ने उस सर्प को बाँधकर गौतमी के समक्ष रख दिया और कहा कि मैं उस सर्प को मार डालूँगा, क्योंकि उसने एक अबोध बच्चे को काट लिया है। इस पर गौतमी ने उसे मना किया और समझाया कि सर्प को मार डालने से बच्चा लौटकर नहीं आ सकता। तब काल वहाँ आया और उसने व्याख्या उपस्थित की– जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

के खण्ड से जो चाहता है उसे बनाता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने द्वारा किये गये कर्मों का फल पाता है। बच्चे के मृत्यु के मूल में है उसके पूर्व जीवन के कर्मों के प्रतिफल। इस बात को गौतमी ने माना और कहा कि उसका पुत्र अपने अतीत जीवन के कर्मों के कारण मरा और उसकी मृत्यु से उसे जो शोक प्राप्त हुआ है वह स्वयं उसके (गौतमी के) पूर्व जन्म के कर्मों का प्रतिफल है।[22] मनुस्मृति में आया है कि पुण्य एवं पाप कर्म के फलस्वरूप मनुष्य विभिन्न योनियों में जन्म पाते हैं।[23]

पुनर्जन्म से छुटकारे या मुक्ति का भी प्राविधान भारतीय दर्शन एवं साहित्य में किया गया है। यह विचारणीय है कि आत्मा की स्वतन्त्रता की झलक मन और जड़ शरीर के स्तरों के भीतर से आभासित होती है और नाम रूप द्वारा रंजित होते हुए भी सदा अपने अबाधित अस्तित्व को प्रमाणित करती है। उसी का अमरत्व, उसी का आनन्दस्वरूप, उसी का आनन्दस्वरूप, उसी की शान्ति और उसी का दिव्यत्व प्रकाशित हो रहा है और अज्ञान के मोटे–मोटे स्तरों के रहते हुए भी वह अपने अस्तित्व का अनुभव कराती रहती है; वही यथार्थ पुरुष है निर्भय है, अमर है और स्वतन्त्र है।[24]

अब स्वतन्त्रता तो तभी सम्भव है जब कोई बाहरी शक्ति अपना प्रभाव न डाल सके, कोई परिवर्तन न कर सकें, स्वतन्त्रता, उसी के लिए सम्भव है जो सभी बन्धनों से परे हो, सभी नियमों से परे हो और कार्य कारण की श्रृंखला से भी परे हो। कहने का तात्पर्य यही है कि एक अव्यय पुरुष ही स्वतन्त्र हो सकता है और उसी कारण अमर भी हो सकता है।[25]

यह पुरुष, यह आत्मा–मनुष्य का यह यथार्थ स्वरूप, मुक्त, अव्यय, अविनाशी, सभी बन्धनों से परे है, और इसीलिए वह न तो जन्म लेता है न मरता है।[26]

भगवान् के दिव्य रूप का दर्शन तथा उसमें रागात्मिका भक्ति ही जीव को मुक्ति देने में समर्थ होती है। कठोपनिषद के द्वारा प्रयुक्त यह रूप कल्पना बड़ी प्रख्यात है कि रथ को जिस प्रकार सारथी लगाम के द्वारा कुमार्ग से बचाकर सुमार्ग में ले जाता है, उसी प्रकार परमात्मा इसको नियन्त्रण में रखता है।[27] अर्थात् जिसे आत्मा के सच्चे अर्थ का ज्ञान हो जाता है अर्थात् परमात्मा का वह जीव पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है और पुनः इस संसार के बन्धन में कभी नहीं पड़ता।

जीवात्मा अमर है तथा शरीर से भिन्न है और हाड़ मांस का शरीर नाशवान एवं क्षण भंगुर है। सम्पूर्ण शारीरिक क्रियाओं का अधिष्ठाता हमारी आत्मा है। (यह ईश्वर का अंश है) क्योंकि जब तक इस शरीर में प्राण रहता है, तब तक वह क्रियाशील रहती है। अभी इस आत्मा के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान बड़े–बड़े पण्डितों और मेधावी पुरुषों तक को नहीं है। आत्मा को जानना ही मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य है।[28]

कर्म के अनुसार उपहार या दण्ड के रूप में जीव नाना योनियों में जन्म लेता है। संसार में अपने अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार उन्नत होता हुआ चौरासी काल योनियों में भ्रमण करने के पश्चात जीव मनुष्य जैसा दुर्लभ और समुन्नत शरीर प्राप्त होता है। अर्थात् यह सुर दुर्लभ मानव शरीर, जो पूर्व जन्मों के सत्कर्मों से मिलता है। इस जन्म में भी शुभ

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

कर्मों में ही लगाना चाहिये, ताकि मनुष्य अवनति, पथ भ्रष्टता और नैतिक पतन की ओर न बढ़ सके।

दूसरी ओर बुरे और निन्दित कर्म करने के कारण दण्ड के रूप में अधः स्वरूप को भी धारण कर सकता है, मनुष्य जीवन की सफलता इसी बात में है कि वह आत्मिक और मानसिक दोषों को त्यागकर निर्मल और पवित्र बने। मल विक्षेप और आवरण रहित बने।[29]

कर्म–पुनर्जन्म सिद्धान्त मानवीय जीवन को नैतिकता के पथ पर आगे बढ़ने के लिए बनाया गया मनुष्य को उसके कर्मों का फल मिलता है, कहकर सिर्फ हम उसे अच्छे कर्मों को करने के लिए प्रेरित कर सकते है, साथ ही साथ हम उसे दुष्कर्मों से बचा भी सकते है। पुनर्जन्म सिद्धान्त को तार्किकता इस बात से प्रदान की जा सकती है कि मनुष्य अगर अपने कर्मों का फल इस जीवन में न भी भोगे तो उस कर्म भोगने के लिए बारम्बार जन्म लेना पड़ता है। इससे एक बात यह हो सकती है कि जो व्यक्ति इस जीवन में दुष्कर्म करके भी सुखी है वे पुनर्जन्म की धारणा से डरकर या स्वयं ही मानकर अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त करे जिससे समाज में पाप कम ही होंगे।

कर्म–पुनर्जन्म सिद्धान्त वस्तुतः समाज को ढर्रे पर लाने का सिद्धान्त है। इससे उन लोगों पर नैतिकता का शिकंजा कसा जा सकता है जो अपराध, भ्रष्टाचार एवं इसी तरह के दुष्कर्मों में संलग्न है।

कर्म–पुनर्जन्म सिद्धान्त वस्तुतः समाज को सुव्यवस्थित एवं सुचारु रूप से चलाने का सिद्धान्त है। इससे वे लोग कर्मफल विपाक के भय से अपराध, भ्रष्टाचार आदि दुष्कर्मो से विरत हो सकेंगे जो इसमें संलग्न है।

संदर्भ सूची–

1. पाणिनि – अष्टाध्यायी 1/4/79
2. वैशेषिक दर्शन भाष्य 1/17, पृ0 35
3. सांख्य तत्व कौमुदी, पृ0 67
4. भीष्म पर्व 26/50
5. यस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमन कुतः चार्वाक सष्टि, पृ0 18
6. ऋग्वेद 1/22/29
7. ऋग्वेद 1/62/6, 1/101/4, 10/54/4, 10/131/4
8. ऋग्वेद 1/148/2
9. ऋ0 10/16/4
10. शतपथ ब्राह्मण 12/9/1/1
11. शतपथ ब्राह्मण 11/6/1/3–6
12. शतपथ ब्राह्मण 11/2/7/33
13. श0 ब्राह्मण 10/1/5/4
14. गीता 2/39

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

15. जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यवत्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।
—गीता 4/9
16. गीता 7/19
17. यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवेति कौन्तेय सदा तद्भाव भक्तिः।।
—गीता 8/6
18. गीता 8/15
19. आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।
—गीता 8/16
20. ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयोधर्ममनुप्रपत्रागतागतं कामकामा लभन्ते।।
—गीता 9/21
21. वनपर्व 30/19
22. यथा मृत्पिण्डत कर्ता कुरुते यद्यदिच्छति।
एव मात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते।
नैव कालो न भुजगो न मृत्युरिह कारणम्।
स्वकर्मभिरपं बालः कालेन निधनं गतः।
मया च तत्कृत कर्म येनायं में मृत सुतः।
यातु कालस्तया मृत्युर्मुञ्चार्जुनकपत्रगम।
—अनुशासन पर्व 1/74, 78—79
23. यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा।
क्रमशायाति लोकेऽस्मिस्तत्तत्सर्व निबोधत।।
—मनुस्मृति 12/54
24. विवेकानन्द : मरणोत्तर जीवन, अध्याय 1, पृष्ठ सं0 5
25. विवेकानन्द : मरणोत्तर जीवन, अध्याय 1, पृष्ठ सं0 5
26. विवेकानन्द : मरणोत्तर जीवन, अध्याय 1, पृष्ठ सं0 6
27. कठोपनिषद 1/3/3
28. ऋग्वेद 1/164/38, अथर्ववेद 9/10/16
29. सामवेद 5/2/8/5